Volume V, Perspectives - A Peer-Reviewed, Bilingual, Interdisciplinary E-Journal
https://perspectives-jdmc.in/
eISSN – 2583 4762

दिव्यांगों का सामाजिक जीवन- भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में

वंदना
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज

जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) के हिन्दी-विभाग में विगत 18 वर्षों से प्रवक्ता के पद पर कार्यरत।
अध्ययन क्षेत्र -
छायावाद एवं छायावादोत्तर काव्य
दिव्यांग-विमर्श
प्रकाशन-कार्य :- तीन मौलिक पुस्तकें तथा UGC-CARE list, Peer-reviewed journals एवं संपादित पुस्तकों में 20 से अधिक शोध-आलेख प्रकाशित।
ईमेल - vandana@jdm.du.ac.in

दिव्यांगों का सामाजिक जीवन- भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में ही वह जन्म लेता है। समाज में रहकर ही वह अपना सर्वांगीण विकास करता है और अंततः समाज में रहते हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है अर्थात् समाज के बिना मनुष्य के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। धरती का प्रत्येक जीव आता अकेला है, जाता अकेला है मगर जीवन जीने के लिए उसे संगी-साथी की आवश्यकता होती है। मानव सभ्यता के इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि बहुत पहले मनुष्य समूहों में रहता होगा और धीरे-धीरे ये समूह ही विस्तारित होते-होते समाज के रूप में परिवर्तित हो गए होंगे। मनुष्य ही नहीं जानवर भी समूह बनाकर रहते हैं, मगर जानवरों और मनुष्यों के समूहों में बहुत बड़ा अंतर होता है। जानवरों का समूह निष्पक्ष, तटस्थ और गुणवत्ता के आधार पर टिका रहता है। वहाँ स्वार्थ व चाटुकारिता का कोई स्थान नहीं है। जानवरों के समूहों में शक्तिशाली द्वारा शक्ति परीक्षण कर प्रतिभाशाली को चुनकर उसका मनोबल बढ़ाया जाता है जिससे समूह ताकतवर बनता है। मनुष्य को उसकी संवेदनाओं से उत्पन्न इच्छाएँ ही जानवर से परे करके मनुष्य की श्रेणी में रखती हैं। मनुष्य की इच्छाएँ अगर नकारात्मक हो जाएँ तो मनुष्य जानवर से भी निकृष्ट हो जाता है। सामाजिक प्राणी होने के कारण प्राचीन काल से ही मनुष्यों ने कई समुदाय बनाए किंतु समय बीतने के साथ-साथ कुछ समुदाय आकार में बड़े होते गए तो कुछ स्वतः ही समाप्त होते गए।

समाज मानवीय अंतःक्रियाओं के प्रक्रम की एक प्रणाली है। मानवीय क्रियाएँ चेतन और अचेतन दोनों स्थितियों में साभिप्राय होती हैं। व्यक्ति का व्यवहार कुछ निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति के प्रयास की अभिव्यक्ति है। उसकी कुछ नैसर्गिक तथा अर्जित आवश्यकताएँ होती हैं, जैसे काम, क्षुधा, सुरक्षा, आदि। इनकी पूर्ति के अभाव में व्यक्ति में कुंठा और मानसिक तनाव व्याप्त हो जाता है। वह इनकी पूर्ति स्वयं करने में सक्षम नहीं। अतः इन आवश्यकताओं की सम्यक संतुष्टि के लिए अपने दीर्घ विकास क्रम में मनुष्य ने एक समष्टिगत व्यवस्था को विकसित किया है। इस व्यवस्था को ही हम समाज के नाम से संबोधित करते हैं। यह व्यक्तियों का ऐसा संकलन है जिसमें वे निश्चित संबंध एवं विशिष्ट व्यवहार की एक ऐसी संगठित व्यवस्था निर्मित करते हैं जो कार्यों के लिए विभिन्न मानदंडों को विकसित करती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत कुछ व्यवहार अनुमत और कुछ निषिद्ध होते हैं। सामाजिक प्रणाली में व्यक्ति को कार्य और पद, दंड और पुरस्कार, योग्यता तथा गुणों एवं सामान्य नियमों और स्वीकृत मानदंडों के आधार पर प्रदान किए जाते हैं। सामाजिक दंड के भय से सामान्यतः व्यक्ति

समाज में प्रचलित मान्य परंपराओं की उपेक्षा नहीं कर पाता, वह उनसे समायोजन का हर संभव प्रयास करता है। चूँकि समाज व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की एक व्यवस्था है इसलिए इसका कोई मूर्त स्वरूप नहीं होता। इसकी अवधारणा अनुभूति मूलक है पर इसके सदस्यों में एक-दूसरे की सत्ता और अस्तित्व की प्रतीति होती है। ज्ञान और प्रतीति के अभाव में सामाजिक संबंधों का विकास संभव नहीं है। पारस्परिक सहयोग एवं संबंध का आधार समान स्वार्थ होता है। समान स्वार्थ की सिद्धि समान आचरण द्वारा संभव होती है। इस प्रकार का सामूहिक आचरण समाज द्वारा निर्धारित और निर्देशित होता है। सामाजिक मान्यताओं की समान लक्ष्यों से संगति के संबंध में सहमति अनिवार्य होती है। यह सहमति पारस्परिक विमर्श तथा सामाजिक प्रतीकों के आत्मीकरण पर आधारित होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सदस्य को यह विश्वास रहता है कि वह जिन सामाजिक विधाओं को उचित मानता और उनका पालन करता है; उनका पालन दूसरे भी करते हैं। इस प्रकार की सहमति, विश्वास एक तदनुरूप आचारण सामाजिक व्यवस्था को स्थिर रखते हैं। सामाजिक संगठन का स्वरूप कभी शाश्वत नहीं बना रहता। समाज व्यक्ति का समुच्चय है और विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनेक समूहों में विभक्त है। अतः मानव मन और समूह मन की गतिशीलता उसे निरंतर प्रभावित करती है। समाज परिवर्तनशील होता है। उसकी यह गतिशीलता ही उसके विकास का मूल है। सामाजिक विकास परिवर्तन की एक चिरंतन प्रक्रिया है जो सदस्यों की आकांक्षाओं और पुनर्निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में उन्मुख रहती है। चूँकि भारत एक विकासशील देश है, अतः भारतीय समाज भी अभी पूर्णतः विकसित नहीं हो पाया है। यही कारण है कि भारतीय समाज में गरीबी, बेरोज़गारी, अशिक्षा, भुखमरी, निरंतर जनसंख्या वृद्धि आदि अनेक समस्याएँ विद्यमान हैं। इन समस्याओं के समाधान के बिना विकसित भारतीय समाज अकल्पनीय है।

दिव्यांग लोगों की आबादी को विश्व के सबसे बड़े गैर-मान्यता प्राप्त अल्पसंख्यक समूह के रूप में देखा जाता है। 2021 की जनगणना के अनुसार भारत में 121 करोड़ की आबादी में से 2.68 करोड़ व्यक्ति 'दिव्यांग' हैं जो कुल जनसंख्या का 2.21% है। दिव्यांग जनसंख्या में 56% (1.5 करोड़) पुरुष हैं और 44% (1.18 करोड़) महिलाएँ हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दिव्यांग व्यक्ति भी समाज के अभिन्न अंग हैं और उन्हें समाज के बीच में रहने का पूर्ण अधिकार है। उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार एवं सामाजिक सेवाएँ प्राप्त करने का भी समान अधिकार है। समान अधिकार से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसके तहत समाज में उपलब्ध सुविधाओं, गतिविधियों, सूचनाओं, दस्तावेज़ों का लाभ सभी व्यक्ति समान रूप से उठा सकें। हर व्यक्ति, चाहे वह दिव्यांग

ही क्यों न हो, एक से महत्त्व का माना जाए तथा उसे हर चीज़ का उपयोग करने का अधिकार हो। समाज की योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिए ताकि हर व्यक्ति को सामाजिक संसाधनों का उपयोग करने का अधिकार मिल सके। अधिकारों के साथ ही दिव्यांगों के समान दायित्व भी हैं। समाज की यह कोशिश होनी चाहिए कि दिव्यांग व्यक्ति इस लायक बनें कि वे सामान्य व्यक्तियों के बराबर ही अपने दायित्वों का निर्वाह भी कर सकें।

समाज में दिव्यांगता एवं दिव्यांगों से संबंधित बहुत सी गलत धारणाएँ आज भी प्रचलित हैं। अतः दिव्यांगों के समग्र विकास हेतु उचित वातावरण बनाने के लिए समाज में व्याप्त इन धारणाओं को बदलना अत्यावश्यक है। आमतौर पर लोगों के दिमाग में बैठा हुआ है कि दिव्यांगता व्यक्ति के पिछले जन्म के पापों का फल है। ज्यों ही परिवार में कोई दिव्यांग बच्चा जन्म लेता है या कोई व्यक्ति अनायास दिव्यांग हो जाता है तो परिवार एवं समाज के सदस्य उसकी दिव्यांगता को उसके पूर्व जन्म के पापों का परिणाम मान लेते हैं। माता-पिता व अन्य परिजन भी अपने आप को दोषी समझने लगते हैं। जिस प्रकार किसी की मृत्यु पर परिवार शोकाकुल हो जाता है लगभग वैसा ही वातावरण घर एवं परिवार में छा जाता है। यथार्थ यह है कि दिव्यांगता के ज़्यादातर कारण ऐसे हैं जिन पर मनुष्य अपने प्रयासों से नियंत्रण कर सकता है। अगर समाज में फैली गरीबी, अशिक्षा, युद्ध व पर्यावरण से छेड़छाड़, आवागमन संबंधी दुर्घटनाओं तथा स्वास्थ्य समस्याओं पर काबू पा लिया जाए तो दिव्यांगता से बहुत हद तक मुक्ति पाई जा सकती है। दिव्यांगता से जुड़ा डेटा गरीबी और दिव्यांगता के बीच पारस्परिक संबंध की ओर संकेत करता है। दिव्यांगता से प्रभावित लोगों की एक बड़ी आबादी ऐसी है जिनका जन्म गरीब परिवारों में हुआ। इसका एक बड़ा कारण यह है कि गरीब परिवारों में गर्भवती माताओं को आवश्यक देखभाल की कमी का सामना करना पड़ता है, ऐसी प्रणालीगत कमियाँ गर्भावस्था के दौरान बड़ी चिकित्सा जटिलताओं का कारण बनती हैं और कई मामलों में इन कमियों के कारण बच्चे जन्मजात दिव्यांगता का शिकार हो जाते हैं। अतः दिव्यांगता के लिए ईश्वर को दोष देना या उसे पूर्वजन्म के पापों का फल मानना भ्रामक और नुकसानदेह है।

भारतीय समाज में सामान्यतः ऐसी धारणा प्रचलित है कि दृष्टिहीन व्यक्ति की आँखों के सामने अंधकार छाया रहता है। अतः लगातार अंधकार देखने के कारण वह अज्ञानी हो जाता है। लोग समझते हैं कि श्रवणहीन व्यक्ति के चारों ओर इस कदर सन्नाटा होता है कि उसे अपने दिल की धड़कन तक सुनाई नहीं देती तथा लगातार सन्नाटा महसूस करने के कारण वह भावनाशून्य हो जाता है। सामाजिक मान्यता है कि

अस्थि-दिव्यांग व्यक्ति के आगे एक किस्म का पहाड़ होता है जिससे आगे जाना उसके लिए असंभव होता है। कुछ भी न कर पाने के कारण अस्थि-दिव्यांग व्यक्ति जड़ और मंदबुद्धि हो जाता है। ये सभी धारणाएँ व मान्यताएँ काल्पनिक हैं। यदि हम दिव्यांग विभूतियों की अद्भुत प्रतिभा, धैर्य और लगन को देखें तो पाएँगे कि आम आदमी के मुकाबले उनका जीवन ज़्यादा प्रकाशमय एवं जिजीविषापूर्ण रहा है। अतः दिव्यांग व्यक्ति के जीवन में आशा की किरण जगाए रखने के लिए इन धारणाओं का मिटना ज़रूरी है।

ऐसा माना जाता है कि भगवान एक हाथ से अगर कुछ लेता है तो दूसरे हाथ से अद्भुत शक्तियाँ अपने आप दे देता है। यह धारणा शायद इसलिए है कि लोगों ने दृष्टिहीन सूरदास की सुंदर रचनाएँ पढ़ी और सुनी हैं। उन्होंने हेलेन केलर के विषय में पढ़ा है जो कला स्नातक की उपाधि अर्जित करने वाली पहली बधिर और दृष्टिहीन महिला थीं। सतीश गुजराल को मात्र 8 वर्ष की आयु में चोट लगने के कारण कम सुनाई पड़ने लगा था और लोग उन्हें लँगड़ा, बहरा और गूँगा समझने लगे। किन्तु सामाजिक उपेक्षा के बावजूद सतीश गुजराल ने चित्रकार, मूर्तिकार, लेखक और वास्तुकार के रूप में अपनी पहचान बनायी। मरियप्पन थांगवेलू ने अस्थि-दिव्यांग होते हुए भी अपनी प्रतिभा के बल पर 2016 पैरा-ओलंपिक खेलों के अंतर्गत ऊँची कूद प्रतियोगिता में स्वर्णपदक प्राप्त किया और भारत सरकार ने उन्हें उत्साहित करने के लिए मात्र 22 वर्ष की आयु में पद्मश्री से सम्मानित किया। उत्तर प्रदेश कैडर के 2007 बैच के आईएएस अधिकारी सुहास लालिनाकेरे यतिराज ने भी 2020 टोक्यो और 2024 पैरिस पैरा-ओलंपिक में रजत पदक प्राप्त किया। इस तरह वे खेलों में लगातार दो पदक जीतने वाले एकमात्र भारतीय पैरा-बैडमिंटन खिलाड़ी बन चुके हैं। 2024 पैरिस के पैरा-ओलंपिक खेलों में अवनि लेखारा ने महिलाओं की 10 मीटर एयर राइफल स्पर्धा में भारत के लिए पहला स्वर्ण पदक जीता, मोना अग्रवाल ने इसी स्पर्धा में कांस्य पदक जीता। यह लेखारा का इस स्पर्धा में लगातार दूसरा स्वर्ण पदक था और वह पैरालिंपिक में कई पदक जीतने वाली पहली भारतीय महिला एथलीट बनीं।

साधारणतः ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक दिव्यांग व्यक्ति दिव्यांगता के बावजूद असाधारण रूप से प्रतिभावान होता है। इसके लिए अक्सर लोग सूरदास, मिल्टन, रवीन्द्र जैन आदि का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। परंतु वास्तव में देखा जाए तो ऐसी धनी प्रतिभाएँ ईश्वर प्रदत्त हुआ करती हैं। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह दिव्यांग हो या सामान्य, असाधारण प्रतिभावान हो सकता है। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र भी हमें यही बताते हैं कि कोई भी व्यक्ति जन्मजात प्रतिभा तथा निरंतर अभ्यास से बड़े से बड़ा कार्य कर सकता है। अतः यह कहना कि दृष्टिहीन व्यक्ति अंतःचक्षुओं के माध्यम से

देखता है, मिथ्या धारणा है। साधारण लोग यह भी कहते हैं कि दृष्टिहीन व्यक्ति के सौंदर्य को अंतर्मन से जान लेता है किंतु यह भी एक भ्रम मात्र है। समाज का एक बड़ा वर्ग दिव्यांग व्यक्तियों को 'सहानुभूतिपूर्ण' और 'दया' की नज़र से देखता है, जिससे उन्हें सामान्य से अलग या 'अन्य' (Other) के रूप में देखे जाने और देश के तीसरे दर्जे के नागरिक के रूप में उनसे व्यवहार को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा एक बड़ी समस्या समाज के एक बड़े वर्ग की मानसिकता से है जो दिव्यांग व्यक्तियों को एक दायित्व या बोझ के रूप में देखते हैं। इस प्रकार की मानसिकता से दिव्यांग व्यक्तियों के उत्पीड़न और भेदभाव के साथ मुख्यधारा से उनके अलगाव को बढ़ावा मिलता है। समाज के सामान्य व्यक्ति उन्हें अपने समकक्ष नहीं रख पाते। उनके साथ सामान्य व्यवहार करने से कतराते हैं। वे उन्हें किसी दूसरे ग्रह का प्राणी मान लेते हैं जो बिल्कुल गलत है। प्रत्येक दिव्यांग जन सामान्य व्यक्ति जैसा ही होता है। उसकी भी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ होती हैं। वह भी सामान्य व्यक्तियों की तरह जीवन में आने वाले सुखों-दुखों से प्रभावित होता है तथा जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए अपने को तैयार करता है। ऐसा भी कहा जाता है कि दिव्यांग व्यक्ति बड़े एकाग्रचित होते हैं पर ऐसा नहीं है। वे भी साधारणजन के समान ही आस-पास घटने वाली घटनाओं से प्रभावित होते हैं तथा आसपास चल रही गतिविधियाँ भी उन्हें आकृष्ट करती हैं। वे समाज के अन्य व्यक्तियों के समान ही हर्षित भी होते हैं और उदास भी। समाज का यह कर्तव्य है कि उन्हें वह दोयम दर्जे का समझकर हाशिए पर न रखे। दिव्यांगजनों को समाज की मुख्यधारा में मिलाये बिना भारतीय समाज का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है।

आम तौर पर दृष्टि यौन संबंधों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यक्ति अपनी प्रेमिका को देखता है और फिर अपना प्यार उड़ेलता है। एक-दूसरे को देखना, आँखों के ज़रिए अपनी इच्छा व्यक्त करना एक आम बात है। व्यक्ति सेक्स के बारे में जानकारी देखकर और सुनकर ही पाता है। क्योंकि भारत में अभी तक यौन शिक्षा औपचारिक रूप से नहीं दी जाती। इस बात की संभावना हो सकती है कि दृष्टि या श्रवण शक्ति के अभाव में व्यक्ति सेक्स के बारे में गलत जानकारी प्राप्त कर ले और उसके मन में सेक्स की भावना न जगे या विकृत सेक्स की भावना जग जाए। पर इसका कारण दिव्यांगता नहीं, गलत सूचना होगा। दिव्यांगता सेक्स की भावना को न तो कम करती है और न ही उसे विकृत करती है। गलत सूचना पाकर स्वस्थ व्यक्ति की काम भावना भी प्रभावित हो सकती है। विज्ञान के अनुसार हार्मोनल परिवर्तन के कारण कामेच्छा जागृत होती है। अतः दिव्यांगता का कामेच्छा जागृत होने, न होने से कोई संबंध नहीं है। इसीलिए दिव्यांग व्यक्ति में कामभावना सामान्य व्यक्तियों के समान ही जागृत

होती है। कुछ मामलों में दिव्यांगता के कारण उत्पन्न समस्याओं– रोज़गार न होने, मानसिक तनाव व हताशा के कारण व्यक्ति की कामवासना दब सकती है। पर ऐसा सामान्य व्यक्ति के साथ भी हो सकता है। इसलिए दिव्यांग व्यक्ति की यौन-क्षमता के बारे में नकारात्मक धारणा बनाने के बजाय उसे सामान्य जीवन जीने के लिए प्रेरित करना चाहिए। वैसे भी दिव्यांगों की एक बहुत बड़ी आबादी सुखद वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही है। अनेक दिव्यांग विभूतियों ने अनेक विवाह किये, जैसे कि मिल्टन की तीन शादियाँ हुईं। तैमूरलंग ने अनेक विवाह किये। नेत्रहीन जान मिल्टन मेटकाफ विवाह मंडप से अपनी प्रेमिका को उठाकर ले गया था, उसने लम्बा सुखद वैवाहिक जीवन बिताया। मृत्यु के समय उसके 90 पौत्र-पौत्रियाँ थे। मेरे भी कुछ ऐसे मित्र हैं जिनकी दो-तीन प्रेमिकाएँ रह चुकी हैं तो कुछ ऐसे हैं कि जिन्होंने दो-दो शादियाँ की हैं। अतः यह स्पष्ट है कि दिव्यांग व्यक्ति की कामभावनाएँ भी उतनी ही प्रखर होती हैं जितनी कि सामान्य व्यक्ति की।

दिव्यांगता न तो मनुष्य को मूर्ख बनाती है और न ही उसकी बुद्धिमत्ता को किसी प्रकार से प्रभावित करती है। व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता का विकास आंतरिक गुणों और बाह्य वातावरण के उचित सम्मिलन में होता है। आम धारणा है कि दृष्टिहीन व्यक्ति देख न पाने और श्रवणहीन व्यक्ति सुन न पाने के कारण और अस्थि-विकलांग व्यक्ति इधर-उधर जाने में असमर्थ होने के कारण बहुत सारी जानकारियों से अवगत नहीं हो पाते। किन्तु ऐसी धारणा पूर्णतः गलत है। आज का युग इंटरनेट का युग है। घर बैठे ही व्यक्ति इंटरनेट के माध्यम से समस्त जानकारियाँ एवं सूचनाएँ प्राप्त कर सकता है। अतः कोई भी दिव्यांग व्यक्ति दिव्यांगता के बावजूद विश्व में घट रही घटनाओं को जान लेता है तथा इच्छा होने पर व्हाट्सअप, फेसबुक, एक्स(ट्विटर) आदि के माध्यम से प्रतिक्रिया भी व्यक्त कर सकता है। व्यक्ति के ज्ञान के विकास में दिव्यांगता कहीं भी बाधक सिद्ध नहीं होती।

आम धारणा यह है कि दृष्टिहीन व्यक्ति स्वप्न नहीं देख सकता किंतु यह धारणा सही नहीं है। चूँकि स्वप्न देखने के लिए खुली स्वस्थ आँखों की आवश्यकता नहीं होती, स्वप्न व्यक्ति अपनी कल्पना के आधार पर देखते हैं। दृष्टिहीन व्यक्ति भी कल्पना कर सकते हैं, अनेक दृष्टिहीन साहित्यकारों ने अपनी कल्पना के आधार पर उत्तम साहित्य की रचना की है। दूसरी ओर श्रवणहीन व्यक्ति की एकाग्रता अद्भुत होती है। वह भी बहुत सोचता है। यदि उसके दैनिक जीवन में कठिनाइयाँ कम हों तो वह बहुत अच्छा सोच सकता है और अपनी कल्पना के आधार पर अपने कृतित्व से दुनिया का मन मोह सकता है। प्रख्यात चित्रकार सतीश गुजराल, प्रभाशाह आदि इसके प्रत्यक्ष

उदाहरण हैं। अस्थि-दिव्यांग व्यक्ति भी अच्छे स्वप्नद्रष्टा होते हैं। इस गुण का बेहतर उपयोग कला के क्षेत्र में हो सकता है।

समाज के बहुत से भागों में दिव्यांगता के कई रूपों को अभी भी संक्रामक मानकर लोग अपने बच्चों को दिव्यांग बच्चों के साथ नहीं खेलने देते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि कई बार जिस मूल रोग के कारण दिव्यांगता आती है वह संक्रामक हो सकता है। कुछ समय पूर्व तक चेचक के कारण व्यक्ति दिव्यांग हो जाता था क्योंकि चेचक एक संक्रामक रोग था। किन्तु आज चिकित्सकों के प्रयासों द्वारा चेचक पर काबू पा लिया गया है। इसी प्रकार किसी समय अमरीका में महिलाओं में होने वाले यौन रोग के कारण बच्चे दृष्टिहीन पैदा होते थे। बाद में उस बीमारी से निजात पा लिया गया। माँ का यौन रोग संक्रामक हो सकता है पर उससे पैदा हुई दृष्टिहीनता या श्रवणहीनता संक्रामक नहीं है। अत: स्पष्ट है कि दिव्यांगता संक्रामक रोग ना तो था और ना ही है। वास्तव में दिव्यांगता का एक प्रमुख कारण भारतीय समाज में फैली अशिक्षा है। यदि दिव्यांगता को फैलाने वाला कोई संक्रामक रोग है तो वह है अशिक्षा। कुष्ठ रोग के बारे में आम धारणा है कि यह रोग लाइलाज है और संक्रामक भी है। जबकि यथार्थ यह है कि कुष्ठ रोग का इलाज संभव है और मल्टीड्रगथेरेपी की सहायता से तमाम कुष्ठ रोगी स्वस्थ हो रहे हैं। कुष्ठ एक रोग होने के साथ-साथ एक सामाजिक समस्या भी है क्योंकि भारतीय समाज कुष्ठ को एक छुआछूत की बीमारी के रूप में देखता रहा है। इसी कारण उपेक्षित रोगी जीवन में निराश होकर प्रायः वाराणसी आदि तीर्थों एवं अन्य स्थानों पर चले जाते हैं जहाँ उन्हें रहने को स्थान और खाने को भोजन आसानी से मिल जाता है। वहाँ पर भिक्षुक बनकर घूमते हैं। अतः चिकित्सा व्यवस्था के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि समाज से कुष्ठ के रोगी के प्रति घृणा के भाव दूर हो। बाबा आम्टे जैसे व्यक्ति ने सारा जीवन कुष्ठ रोगियों की सेवा में अर्पित कर दिया और वे उन्हीं के बीच रहते रहे पर उन्हें कभी भी रोग नहीं हुआ। दिव्यांगता बीमारी, दुर्घटना, कुपोषण आदि में से किसी एक का या इनका सम्मिलत परिणाम है, यह स्वयं कोई बीमारी नहीं है इसलिए संक्रामक होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

समाज में ऐसी मान्यता है कि दिव्यांग व्यक्ति मूलतः अविश्वसनीय और गैर-ज़िम्मेदार होते हैं। यह सत्य है कि दिव्यांग व्यक्ति को अनजानी जगह पर अनजाने लोगों से मदद लेनी पड़ती है। इससे उसके आत्मविश्वास में अक्सर कमी आ जाती है। उन्हें अनेक बार गंभीर तनाव और हताशा से भी गुज़रना पड़ता है। कई बार इन कारणों से परिस्थितियों के अनुकूल न ढल पाने और सही विचारधारा के जन्म न ले पाने के कारण गैर-ज़िम्मेदारी और अविश्वसनीयता आ जाती है परंतु ऐसा सामान्य व्यक्तियों

के साथ भी हो सकता है। अतः समाज में दिव्यांगों के प्रति गलत सामाजिक धारणा विकसित हुई है और दिव्यांगों को भारी नुकसान हुआ है। दिव्यांग व्यक्ति समाज और वातावरण के प्रभाव से प्रभावित होता है। यदि समाज उसके प्रति नकारात्मक रवैया रखेगा तो व्यक्ति का नकारात्मक रवैया बन सकता है। यह बात सामान्य व्यक्ति के साथ भी संभव है। सामान्य व्यक्ति परेशानी में व विपरीत परिस्थितियों में उसी प्रकार व्यवहार करता है जैसा दिव्यांग व्यक्ति करता है। इसलिए दिव्यांगता का व्यक्ति के विश्वसनीय होने से कोई संबंध नहीं है। दूसरी ओर ज़िम्मेदारी की भावना व्यक्ति के निश्चय और काम में संलग्न होने से आती है। दिव्यांग व्यक्ति को आम आदमी की अपेक्षा अधिक संघर्ष करना पड़ता है। अवसर मिलने पर वह अपनी ज़िम्मेदारी ज़्यादा ईमानदारी एवं तत्परता से निभाता है। यह देखा गया है कि दिव्यांग व्यक्ति जब किसी उद्योग में सामान्य कर्मचारियों के साथ काम करते हैं तो ज़्यादा समझदारी और ज़िम्मेदारी के साथ काम करते हैं। उनकी कार्यस्थल में अनुपस्थिति बहुत कम होती है और समय तथा कच्चे माल की बरबादी बहुत कम करते हैं। आज खुले बाज़ार की अर्थव्यवस्था में हर व्यक्ति के सिर पर तलवार लटकती रहती है कि उसे कभी भी निकाला जा सकता है। ऐसे में भी अनेक जगह अनेक दिव्यांग व्यक्ति पूरी कुशलता से कारखानों व कृषि फार्मों में काम कर रहे हैं। वे शिक्षक का, वकील का, प्रशासक का, निरीक्षक का काम बखूबी कर रहे हैं। वे नौकरी भी कर रहे हैं और अपना व्यवसाय भी। वे ऐसा इसलिए कर पा रहे हैं क्योंकि वे विश्वसनीय और ज़िम्मेदार हैं।

समाज की यह धारणा है कि दिव्यांग व्यक्तियों को क्रोध बहुत जल्दी आता है परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। समाज का दिव्यांगों के प्रति उपेक्षित व्यवहार, उनके प्रति दया, सहानुभूति का बर्ताव तथा उन्हें अपने समकक्ष न रखने की भावना एवं उन्हें उनकी योग्यता के अनुरूप सम्मान न देना उनके क्रोध का कारण है। दिव्यांग व्यक्ति को भी अधिकार है कि वह समाज के सामान्य व्यक्तियों के समान ही उत्कृष्ट एवं आदरपूर्वक जीवन निर्वाह कर सके। कहा जाता है कि जो कमज़ोर है उसका शोषण अनिवार्य है इसलिए समाज दिव्यांगों के साथ अभद्र व्यवहार करने से नहीं चूकता। अंधा, लँगड़ा, गूँगा, बहरा, पागल, सर्किट आदि शब्द हमें रोज़ सुनाई देते हैं और न चाहते हुए ये शब्द दिव्यांगों को स्वीकार करने पड़ते हैं क्योंकि वे अभी इतने सशक्त नहीं हो पाए हैं कि समाज में अपने लिए ऐसे लोगों से सम्मान की उम्मीद कर सकें या उनको मुँहतोड़ जवाब दे सकें।

जैसा कि हम सब जानते हैं कि संसार में लगभग आधी आबादी महिलाओं की है, अतः समाज के विकास में जितना योगदान पुरुष का है उतना ही नारी का भी है।

किन्तु प्राचीन काल से आज तक नारी को दोयम दर्जे का ही समझा जाता रहा है। सरकारों एवं समाजविदों के अनवरत प्रयासों के बावजूद भी नारी को पुरुषों के समकक्ष आज तक स्थान नहीं मिल पाया है। जब सामान्य नारी ही अपने अधिकारों को प्राप्त नहीं कर पाई है तो दिव्यांग नारी के अधिकारों की बात करना निरर्थक-सा लगता है। दिव्यांग नारी का संघर्ष उसके जन्म से ही आरंभ हो जाता है। माता-पिता उसे बोझ मानते हैं, समाज उसे स्वीकार नहीं करता, शिक्षा से उसे वंचित रखा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह एक पशु के समान जीवन जीने के लिए बाध्य हो जाती है। जैसे-जैसे हम पाश्चात्य सभ्यता में रमते जा रहे हैं वैसे-वैसे हम संस्कारहीन होते जा रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आए दिन पुरुषों के द्वारा नारियों का बलात्कार एवं हत्या है। जब सामान्य नारी समाज में इतनी असुरक्षित है तो दिव्यांग नारी की सुरक्षा के विषय में सोच पाना असंभव है। जिन संस्थाओं में दिव्यांग नारियों को शिक्षा दी जाती है वहीं के पुरुष कर्मचारी उनके रक्षक न होकर भक्षक बन जाते हैं। सबसे अधिक मानसिक रूप से दिव्यांग नारियों को पुरुष की हवस एवं वहशीपन का शिकार होना पड़ता है। पुरुष अपनी वासना की तृप्ति के लिए यह भी भूल जाता है कि वह जिस नारी का बलात्कार कर रहा है उसे तो बालात्कार का अर्थ ही नहीं पता। उसके पास तो इतनी बुद्धि भी नहीं है कि वह अपने साथ किए गए यौन उत्पीड़न की शिकायत तक किसी से कर पाए, तो फिर पुलिस तक जाने तक की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। वास्तव में भारत में यदि 10 प्रतिशत लोग शारीरिक दिव्यांगता के शिकार हैं तो बाकी बचे 90 प्रतिशत लोग वैचारिक दिव्यांगता से पीड़ित हैं। वे कभी भी किसी का कोई दुःख नहीं समझ सकते और न परेशानी। विज्ञान ने काफ़ी हद तक उन्नति कर ली है इसलिए शारीरिक दिव्यांगता का इलाज लगभग संभव है और कुछ का अगर नहीं है तो उनका विकल्प है जिससे शारीरिक रूप से कमज़ोर व्यक्ति एक सामान्य जीवन जीने का भरसक प्रयास कर सकता है। परंतु वैचारिक दिव्यांगता का कोई इलाज नहीं है और शायद अभी शताब्दियाँ लगेंगी इस रोग की वैक्सीन बनाने में। दिव्यांग नारी के कल्याण के लिए समाज में चल रही संस्थाएँ भी उनका कल्याण न करके सहायता के नाम पर उनके साथ दुर्व्यवहार ही कर रही हैं। दिव्यांग नारी का उत्पीड़न परिवार, विद्यालय, कार्यस्थल अर्थात् समाज के हर क्षेत्र में किया जा रहा है।

पूरे विश्व में दिव्यांग समाज ही शायद ऐसा है जो अदिव्यांग समाज की हेय दृष्टि, उपेक्षित व्यवहार, तिरस्कारपूर्ण भाषा का चुपचाप विषपान करता आ रहा है। स्मरणीय है कि दिव्यांग का सबसे बड़ा अपमान उसकी क्षमता का अनादर, उपेक्षा, अविश्वास एवं उसकी अवमानना है। दिव्यांगता एक ऐसा विषय है जिसके बारे मे हमारे

भारतीय समाज में कभी भी गंभीरता से नहीं सोचा गया। सच कहूँ तो हमारा समाज जिसे भी निचले दर्जे का व्यक्ति मान लेता है उसके प्रति समाज का व्यवहार अत्यंत रूखा और बुरा हो जाता है। चाहे वह एक भिखारी हो, कोई सफ़ाई कर्मचारी हो, रिक्शा खींचने वाला हो, त्वचा के गहरे रंग वाली कोई महिला हो या कोई दिव्यांग हो। हमारे समाज की नज़र में ये सब निचले दर्जे के लोग हैं। इन लोगों को सामाजिक ताने-बाने में आ फँसे ऐसे धागों की तरह देखा जाता है जिनकी ज़रूरत नहीं है। हमारा भारतीय समाज इंसानों से मिलकर नहीं बना; बल्कि अमीर-गरीब, ताकतवर-कमज़ोर, सुंदर-कुरूप, अक्षम और सक्षम से मिलकर बना है। भारत में दिव्यांगता केवल दिव्यांगता नहीं है बल्कि अभिशाप है। जो लोग दिव्यांग नहीं हैं वे किसी दिव्यांग व्यक्ति के रास्ते में आने वाली बाधाओं की रंच मात्र भी कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि इतनी संवेदनशीलता के साथ सोचने के लिए हमारे समाज ने स्वयं को प्रशिक्षित ही नहीं किया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि दिव्यांगजन स्वयं अपनी दिव्यांगता के लिए ज़िम्मेदार नहीं होते परंतु फिर भी समाज पारिवारिक जन, सहपाठी, शिक्षक, मित्रगण सभी ताउम्र उसे यह अहसास कराते ही रहते हैं कि वही अपनी दिव्यांगता का दोषी है और दिव्यांग होना ही उसका सबसे बड़ा अपराध है और इस अपराध की सज़ा उसे ताउम्र इन सबके द्वारा दी जाती है। इसलिए वह सामान्यजन को अन्तर्मन से अपना सहपाठी, मित्र, शिक्षक स्वीकार नहीं कर पाता और अंदर ही अंदर घुटन से युक्त जीवन जीने के लिए बाध्य हो जाता है। चाहकर भी उसका दृष्टिकोण समाज के प्रति सकारात्मक नहीं हो पाता।

आज अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ दिव्यांगों के जीवन को सुगम बनाने के लिए तथा उन्हें उनके अधिकार दिलाने के लिए कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं को चाहिए कि वे दिव्यांग महिलाओं की सुरक्षा से संबंधित मुद्दों को भी सरकार, न्यायालय तथा समाजविदों के समक्ष उठाएँ जिससे कि दिव्यांग महिलाएँ भी बिना किसी भय के अपना जीवन व्यतीत कर सकें। दिव्यांग व्यक्ति की सबसे बड़ी सहायता उसे अनावश्यक रूप से सहायता न करके की जा सकती है। यदि कोई व्यक्ति अनावश्यक रूप से उसकी सहायता करेगा तो दिव्यांग व्यक्ति को खलेगा। दिव्यांग व्यक्ति की दुष्कर परिस्थितियों में अवश्य सहायता करनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर, व्यस्त सड़क पार करने में दृष्टिहीन व्यक्ति की मदद करना आवश्यक है। यदि आप किसी दिव्यांग व्यक्ति की सहायता कर रहे हैं तो सम्मानजनक तरीके से करें। दिव्यांग व्यक्ति की दिव्यांगता पर अनावश्यक चिंता न व्यक्त करें। आम तौर पर दिव्यांग व्यक्ति अपनी दिव्यांगता के बावजूद समाज में व्यवस्थित हो जाता है। वह धीरे-धीरे अपनी दिव्यांगता को भूलता चला जाता है और परिस्थितियों के साथ समझौता कर उन्हें स्वीकार कर लेता है। यदि

किसी दिव्यांग बच्चे या युवा को भीख न दी जाए तो बेहतर है क्योंकि इससे उसकी अकर्मण्यता बढ़ती है। यदि संभव हो तो उसे ऐसी जगह पहुँचा दिया जाए जहाँ दिव्यांगों को रखा जाता है और उन्हें काम सिखाया जाता है। आप भीख देने के बजाए उन्हें शिक्षा और रोज़गार प्राप्त करने के तरीके और स्थान बता सकते हैं। बच्चे चंचल होते हैं। वे प्रश्न करके जानकारी पाना चाहते हैं। वे अपनी सामाजिक पहचान बनाना चाहते हैं। ये सब उनकी स्वभाविक गतिविधियाँ हैं और दृष्टिहीन, श्रवणहीन या अस्थि-दिव्यांग बच्चों में भी ये इच्छाएँ होती हैं और इन्हें दबाना नहीं चाहिए। प्रत्येक बच्चे को स्वतंत्र रूप से अपनी गतिविधियाँ करने का अवसर देना चाहिए अन्यथा बच्चे का स्वाभाविक विकास रुक जाएगा। वास्तव में परिवारजनों को दिव्यांग बच्चे को ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी देकर उसकी जिज्ञासा शांत करनी चाहिए। उसे खुद भी ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए।

दिव्यांग व्यक्ति के जीवन में एक बड़ा अभाव मित्रों का होता है। यदि आप किसी दिव्यांग व्यक्ति के मित्र बन सकें और वह आपसे सभी अच्छी और बुरी बातें कह सके तो आप उसकी बहुत बड़ी मदद कर रहे हैं। दिव्यांग व्यक्तियों को ऐसे लोगों से मिलना चाहिए जो दिव्यांगता के बावजूद अपने जीवन में सफल हुए हैं। इससे दिव्यांग व्यक्ति स्वतः समझ पाएगा कि बाधाओं से किस प्रकार निपटा जाता है। दिव्यांगजन को यह अहसास करवाना अत्यंत आवश्यक है कि वह भी समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। समाज का उसके प्रति भी उत्तरदायित्व है और समाज के विकास में उसे भी योगदान देना है।

'दिव्यांग' या 'डिफरेंटली एबल्ड' जैसे शब्दों के प्रयोग मात्र से ही दिव्यांग लोगों के प्रति बड़े पैमाने पर सामाजिक विचारधारा को नहीं बदला जा सकता। ऐसे में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि सरकार द्वारा नागरिक समाज और दिव्यांग व्यक्तियों के साथ मिलकर कार्य करते हुए एक ऐसे भारतीय समाज के निर्माण का प्रयास किया जाए जहाँ किसी की दिव्यांगता पर ध्यान दिये बगैर सभी का स्वागत और सम्मान किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. समकालीन चिंतन, श्यामबाला राय
2. समकालीन विमर्श, मुद्दे और बहस सं-रवि कुमार गोंड, महेंद्र प्रताप सिंह
3. विकलांगता : संक्षिप्त परिचय, ए. के. मित्तल
4. Discrimination on the ground of disabilities, Dr. Mahabir Prasad Yadav